आत्म-साक्षात्कार की कला : ध्यान

❑ आचार्य डॉ. श्री शिवमुनि

ध्यान एक दर्शन है। ध्यान शुभ भी है और अशुभ भी। आत्म स्वभाव में रमण करना ही ध्यान है। मन की चंचल वृत्तियों पर समता का अंकुश लगाना ध्यान है। ध्यान करने-करवाने की कला में सिद्धहस्त आचार्य डॉ. शिवमुनि जी म. ध्यान के रहस्यों को उद्‌घाटित कर रहे हैं, अपने इस आलेख के माध्यम से। — सम्पादक

ध्यान : आत्मभाव में रमण

भारत की भूमि आध्यात्मिक साधना की रंगस्थली रही है। इस भारत में समय-समय पर अनेक तीर्थंकरों का एवं प्रबुद्ध महापुरुषों का अवतरण हुआ है। यहाँ अनेकानेक आत्माएँ दिव्य साधना के बल पर अपनी दिव्यता को प्राप्त कर चुकी हैं। उन्होंने जन-जन को भगवत्ता प्राप्त करने की साधना दी है, जो आज के भौतिक सुखों की दौड़ में दौड़ने वाले जनमानस को वर्तमान क्षण में शाश्वत सुख-शान्ति की अनुभूति कराती है, वह साधना है – **ध्यान-साधना।**

ध्यान के सम्बन्ध में आचार्यों का मत है कि उत्तम संहनन वाली आत्मा का किसी एक अवस्था में अन्तर्मुहूर्त के लिए चिंता का निरोध होता है वही ध्यान है।

"उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानम्।"

(तत्त्वार्थ सूत्र १-२१)

अर्थात्, साधक का अपने चित्त का निरोध करते हुए अपने आत्मभाव में विना किसी व्यवधान के (अन्तर्मुहूर्त) स्थित रहना ही **ध्यान** है।

भगवान् महावीर से गौतम स्वामी ने पूछा – **"एगग्गमण सन्निवेसणाएणं भन्ते जीवे किं जणयइ?"** अर्थात् भन्ते ! एकाग्र मन सन्निवेशना से जीव को क्या प्राप्त होता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा कि एकाग्रमन सन्निवेशना से जीव चित्त का निरोध करता है।

एकाग्रता अर्थात् अपने चित्त को किसी एक आलम्बन में स्थित करके आत्मभाव में रमण करने से चित्त का निरोध होता है और आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है। अतः चित्त की स्थिरता ही आत्मभाव में रमण करने का साधन है ; यही साधन **ध्यान** है।

मन का स्वरूप क्या है? — जैसे सागर में लहरों का स्थान है वही स्थान चेतना रूपी समुद्र में अर्थात् अंतःकरण में उठनेवाले संकल्प-विकल्प जनित वैचारिक लहरों का है। इन संकल्प-विकल्पों का कोई निज अस्तित्व नहीं है। ज्यों ही समुद्र शान्त होने पर लहरें शान्त हो जाती है, उसी प्रकार चेतना में शुद्ध भावों का आविर्भाव होने पर अंतःकरण के संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं और निर्विकल्पक अवस्था प्राप्त होती है। निर्विकल्पक अवस्था को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है – **ज्ञाता-द्रष्टा भाव की साधना।** अंतःकरण में उठनेवाले संकल्प-विकल्पों को द्रष्टाभाव से देखने का अभ्यास साधना के द्वारा करें। तभी उसे अनुभूति होती है –

एगो मे सासओ अप्पा नाण-दंसण संजुओ।
सेसा से बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा।।

अर्थात् एक मेरी आत्मा शाश्वत है जो ज्ञान-दर्शन से संयुक्त है शेष सभी वाहर के भाव हैं। अर्थात् संयोग मात्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपनिषद् में भी कहा है कि **"आत्मानि विज्ञाते सर्व-मिदं विज्ञातं भवति"** – जो आत्मा को जान लेता है उसे सर्व ज्ञात हो जाता है। यहाँ जानने का अर्थ अनुभूति है। जब यह अनुभूति होती है, तब साधक संसार के माया, मोह, संयोग, वियोग से ऊपर उठ जाता है और सबको जानकर अपने आत्मभाव में रमण करता है।

ज्ञाता-द्रष्टा भाव की साधना है – ध्यान

ध्यान की जागृत अवस्था आनन्दमयी होती है, यह प्रगति का सोपान है, इस अवस्था में सत्य का सवेरा होता है। ज्ञान आदित्य का उदय होता है। तब आत्मा अपने स्वरूप का बोध प्राप्त करके जाग उठती है। उसके जीवन में **"सच्चं खु भगवं"** की ज्योति जगमगाने लग जाती है। उस आत्म-ज्योति के दर्शन होते ही हृदय की सभी ग्रन्थियाँ विलीन हो जाती है और उसके सब संशय समूल क्षीण हो जाते हैं। कहा है कि -

भिद्यते हृदय ग्रन्थिर्छिद्यते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् द्रष्टे परावरे।।

अब प्रश्न समुपस्थित होता है कि हम ध्यान कैसे करे? ध्यान क्या है? ध्यान क्यों करें?

ध्यान क्या है?

ध्यान है – अमन की स्थिति। ध्यान है – मन का शून्य हो जाना। ध्यान है- मन का सध जाना। ध्यान है – चेतना का ऊर्ध्वारोहण। ध्यान है- अंतर का स्नान। ध्यान है – चित्त की शुद्धि। ध्यान है – विकारों से हटकर निर्मल हो जाना। ध्यान है – अन्तर में प्रवेश। ध्यान ही मुक्ति का द्वार है। ध्यान ही अंतर की जागरुकता है। ध्यान है – अहिंसा, संयम व तप रूपी त्रिवेणी की साकार अनुभूति के साथ जीवन जीना। ध्यान अंतर की खोज है। ध्यान बाहर से पर्दा हटाता है और अन्दर की ओर ले के जाता है। जैसे पक्षी दिनभर आकाश में उड़ता रहता है और साँझ को अपने घौंसले में आ जाता है वैसे ही विभाव से हटकर स्वभाव में आ जाना ही ध्यान है। ध्यान एक दीपक है जो अन्तर के आलोक को प्रकाशित करता है। ध्यान एक पवित्र गंगा है, जिसके पास बैठकर तुम स्नात हो सकते हो। ध्यान एक कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर के आप आनन्द के आलोक तक जा सकते हो।

सामायिक ही ध्यान है – भगवान् महावीर के शब्दों में सामायिक ही ध्यान है। उन्होंने सामायिक व ध्यान को अलग नहीं कहा। सम्+आय+इक = सामायिक अर्थात् - समता ही ध्यान है। भगवान् महावीर ने ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में ध्यान के चार भेद बताये हैं – आर्त, रौद्र, धर्म एवं शुक्ल। उनमें आर्त और रौद्र भी ध्यान है, लेकिन वह गलत है, वासनाओं से भरा हुआ निगेटिव है। वह संसार की ओर ले जायेगा। धर्म और शुक्ल आपको परमार्थ की ओर ले जाएगा।

स्वाध्याय व ध्यान का स्वरूप – ध्यान का अर्थ आँखें बन्द करना नहीं होता। ध्यान का अर्थ है – अपने स्वरूप में आ जाना। वस्तुतः **भगवान् महावीर की साधना, उनका ज्ञान, आचरण एवं तप को जीवन में स्थापित करना है तो वह एक ही धारा है, वह है – स्वभाव और ध्यान। हम दोनों को अलग नहीं कर सकते। दो ही पंख है, दो ही पहिये है – गाड़ी के। स्वाध्याय का अर्थ ही ध्यान होता है और ध्यान का अर्थ ही स्वाध्याय होता है। सामायिक का मतलब ही ध्यान होता है और ध्यान का मतलब ही सामायिक होता है, स्वाध्याय का अर्थ कुछ बोलना, धर्मकथा करना इतना ही स्वाध्याय नहीं होता। स्वाध्याय का अर्थ अपने को जान लेना है। स्व का चिन्तन, मनन करते हुए अनुशीलन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशीलन के गूढ़तम रहस्य को अनुभव करना स्वाध्याय है।

ध्यान क्यों करें ?

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा 'मन वायु की गति के समान चंचल है, उसे बाँधना, उसे वश में करना बड़ा कठिन है।'

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् महावीर ने कहा "मन दुष्ट घोड़े के समान है, उसे साधना कठिन है।" जितनी भी धर्म की साधनाएँ हैं, वे मन के द्वारा होती हैं। आज हमारी भाव सामायिक लुप्त हो गई है। हमारा भाव प्रतिक्रमण/कायोत्सर्ग की साधना नहीं रही। आज आम शिकायत यह है कि सामायिक में मन नहीं लगता। माला में मन नहीं लगता। धर्म-क्रियाओं में मन नहीं लगता। मन हमेशा बिखरा-बिखरा रहता है। दुकान में हैं तो आधा मन घर में रहता है, टी.वी. देख रहे हैं तो आधा मन दूसरे कामों में लगा रहता है। बच्चे पढ़ रहे हैं तो उनका आधा मन खेल में लगा रहता है। जो भी कार्य हम कर रहे हैं, उसे एकाग्रतापूर्वक कैसे करें? जीवन के हर क्षण में समता, शाँति, सुख, चैन से कैसे रहें....? इसके लिए है – ध्यान।

हमारी भारतीय संस्कृति में ऋषि-मुनियों ने वर्षों तक साधना करके मन को साधा। हिन्दू संन्यासी, बौद्ध भिक्षु, जैन साधु, भगवान् महावीर या गौतम बुद्ध, सभी ने ध्यान के माध्यम से अपने मन को साधा।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमस्संति जस्स धम्मे सया मणो।।

(दशवैकालिक सूत्र)

धर्म मंगल है, उत्कृष्ट है। कौन-सा धर्म? अहिंसा - अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति प्रेम-मैत्री, संयम यानी मन एवं इंद्रियों को साधना। तप से तात्पर्य है अंतर तप.... यही तप ध्यान है। ऐसे धर्म का जो पालन करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अतः धार्मिक, सामाजिक एवं दैनिक जीवन के हर कार्य में ध्यान आवश्यक है।

ध्यान कैसे करे ?

केवल आँखें बंद करने से ही ध्यान नहीं होता। यह तो प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जब आप पक जाते हैं, तो आप २४ घण्टे समाधि अवस्था में, ध्यान अवस्था में रह सकते हैं।

जैसे प्रारंभ में कार चलाना सीखनेवाले को बहुत ध्यान रखना पड़ता है, ब्रेक्स कहाँ है? गाड़ी को कैसे चलाना है? परंतु जब वह उस काम में निपुण हो जाता है, तब उसके लिए गाड़ी चलाना सहज हो जाता है।

इसी प्रकार प्रारंभ में आपको मौन रखते हुए, एक स्थान पर स्थिर बैठकर, आहार की शुद्धि करते हुए ध्यान करवाना पड़ता है। लेकिन वास्तव में ध्यान तो सहज होता है, कराना नहीं पड़ता है। हमारी आत्मा का स्वभाव है – ध्यान, यह सामायिक ध्यान ही है। सामायिक समता है। समता आत्मा का निज गुण है। इसको बाहर से लाया नहीं जा सकता। वह तो भीतर से प्रकट होता है। जैसे नींद को लाना नहीं पड़ता, भोजन को पचाना नहीं पड़ता, नींद आती है, भोजन पचता है। केवल हमें वातावरण बनाना पड़ता है। वैसे ही हम ध्यान के लिए वातावरण बनाते है।

ध्यान की पूरी विधि... **ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि** से आती है। **ठाणेणं** अर्थात् शरीर से स्थिर होकर, **मोणेणं** अर्थात् वाणी से मौन होकर, **झाणेणं** अर्थात् मन को ध्यान में नियोजित कर, **अप्पाणं वोसिरामि**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से अभिप्राय है शरीर के प्रति ममत्व का त्याग। यहाँ पर **अप्पाणं वोसिरामि** का अर्थ आत्मा का त्याग करना नहीं अपितु देह के प्रति आसक्ति का त्याग, मूर्च्छा भाव का त्याग है। जब कायिक, वाचिक, और मानसिक प्रवृत्तियों पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है, तब ध्यान फलीभूत हो जाता है। समाधि की प्राप्ति होती है। आत्मा सिद्ध गति को प्राप्त कर लेती है। अतः ध्यान मोक्ष का कारण है।

महापुरुषों की दृष्टि में ध्यान

भ. महावीर ने धर्मध्यान कहा, बुद्ध ने विपश्यना कहा, महर्षि पतंजलि ने समाधि कहा, रमण महर्षि ने मैं कौन हूँ? कहा, अरविन्द ने एक Universal Super Man की कल्पना की, जे. कृष्णमूर्ति ने Choiceless Awareness की बात कही। गुरु जी.एफ. ने Awareness की बात ही, कुछ नाम ले लो फर्क नहीं, सार है एक, तुम्हारे भीतर का धागा, अन्तर की ज्योति, तुम्हारी चेतना, साक्षीभाव। यह मानव का देह मिट्टी के दीपक की भाँति है, परंतु इसमें रही हुई एक ज्योति हमेशा ऊपर की ओर उठेगी।

जैन धर्म में ध्यान साधना का इतिहास

जैन धर्म में ध्यान साधना की परंपरा प्राचीन काल से उपलब्ध होती है। इसका सबसे सुंदर और प्राचीन प्रमाण है कि, सभी २४ तीर्थंकरों की प्रतिमायें चाहे वह पद्मासन में है, या खड़े हुए कायोत्सर्ग की मुद्रा में है। वे सभी ध्यान मुद्रा में ही उपलब्ध होती है। इतिहास साक्षी है कि कभी भी कोई भी जिन प्रतिमा ध्यान मुद्रा के अतिरिक्त किसी अन्य मुद्रा में उपलब्ध नहीं हुई। अतः जैन परंपरा में ध्यान का महत्व सर्वोपरि रहा है। आचारांग सूत्र में भगवान् महावीर की ध्यान-साधना सम्बन्धी बहुत संदर्भ उपलब्ध हैं। भगवान् की साधना सावलम्ब व निरावलम्ब दोनों प्रकार की रही। **'सिद्धों को नमस्कार'** की अनुगूंज से ग्रहण किए हुए संयम के पथिक श्रमण महावीर ने दीक्षा के अनन्तर सर्वप्रथम विहार कूर्मग्राम की ओर किया। स्थलमार्ग से वहाँ पहुँचकर ध्यानस्थ हो गए। उनके ध्यान के सम्बन्ध में बताते हुए कहा है -

"नासाग्रन्यस्तनयनः प्रलम्बित भुजद्वयः।
प्रभुः प्रतिमया तत्र तस्थौ स्थाणुरिव स्थिरः।।"

अर्थात् नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर कर दोनों हाथों को लम्बे किए हुए भगवान् स्थाणु की तरह ध्यान में अवस्थित हुए। नासाग्रदृष्टि का अर्थ है नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर करना। अर्धमुंदितनेत्र – आँखें आधी बन्द और आधी खुली।

भगवान् की साधना के सम्बन्ध में आगमकार कहते हैं –

"अदुपोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अंतसो झाइ।
अह चक्खु-भीया सहिया ते हंता हंता बहवे कंदिंसु।।

(आचा. प्रथमश्रुत स्कन्ध ९-१-५)

भगवान् एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर आँखें गड़ा कर अन्तरात्मा में ध्यान करते थे। (लम्बे समय तक अपलक रखने से पुतलियाँ ऊपर को उठ जाती थी) अतः उनकी आँखें देखकर भयभीत बनी बच्चों की मण्डली मारो! मारो!! कहकर चिल्लाती, बहुत से अन्य बच्चों को बुला लेती।

भगवान् की ध्यान साधना भी विशेष अनुष्ठान रूप मात्र न होकर समग्रजीवन चर्या रूप थी। आगमकारों ने कहा है –

"अप्पं तिरियं पेहाए अप्पं पिट्ठओ उप्पेहाए
अप्पं बुइएपडिभासी पंथपेही चरे जयमाणे।"

(आचा. प्रथमश्रुत स्कन्ध ९-१-२१)

श्रमण भगवान् महावीर चलते हुए न तिर्यक् दिशा को देखते थे, न खड़े होकर पीछे की ओर देखते थे और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न मार्ग में किसी के पुकारने पर बोलते थे। किन्तु मौनवृत्ति से यत्ना पूर्वक मार्ग को देखते हुए चलते थे।

आचारांग सूत्र के अनुसार भगवान् महावीर ने ध्यान साधना की बाह्य और आभ्यंतर अनेक विधियों का प्रयोग किया था। वे सदैव जागरुक होकर अप्रमत्त भाव से समाधि पूर्वक ध्यान करते थे। भगवान् महावीर के पश्चात् यह ध्यान-साधना की प्रवृत्ति निरंतर बनी रही। उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि मुनि दिन के द्वितीय प्रहर में और रात्रि के द्वितीय प्रहर में ध्यान-साधना करें। उस समय के साधकों को ध्यान-साधना मुनिजीवन का आवश्यक अंग थी। श्री भद्रबाहु स्वामी ने नेपाल में जाकर महाप्राण ध्यान की साधना की, ऐसा उल्लेख आवश्यक चूर्णि भाग-२ के पृष्ठ १८७ में मिलता है। इसी प्रकार **दुर्बलिका पुष्यमित्र** की ध्यान साधना का उल्लेख भी आवश्यक चूर्णि में उपलब्ध है।

अतः ध्यान आत्म साक्षात्कार की कला है। मनुष्य के लिए जो कुछ भी श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है; वह ध्यान से ही उपलब्ध हो सकता है। ध्यान-साधना पद्धति **कोऽहं** से प्रारंभ होकर **सोऽहं** के शिखर तक पहुँचती है। अतः ध्यान अध्यात्मिकता का परम शिखर है।

❑ आचार्य डॉ. श्री शिवमुनिजी का जन्म सन् १९४२ में पंजाब के मलोट कस्बे के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। आपने ३० वर्ष की उम्र में श्रमण दीक्षा ग्रहण की। इसके पूर्व आपने विदेश के अनेक स्थानों की यात्रा करके वहाँ की संस्कृतियों का अध्ययन किया। आपने अंग्रेजी में एम.ए. किया तथा पी.एच.डी. एवं डी.लिट्. की उपाधियां प्राप्त की। आप स्वभाव से सरल, विचारों से प्रगतिशील एवं विशिष्ट ध्यान साधक हैं। आपने दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों – "भारतीय धर्मों में मुक्ति का सिद्धांत" एवं "ध्यान : एक दिव्य साधना" की रचना की। १९९९ में आप श्रमण संघ के चतुर्थ आचार्य घोषित हुए। आपने अनेक ध्यान-शिविरों का आयोजन किया। – सम्पादक

नारी की जैन धर्म और जैनदर्शन ने निंदा नहीं की है। लेकिन विकृत जीवन चाहे वह नारी का हो, चाहे पुरुष का हो, साधु या साध्वी का हो, जहाँ जीवन मार्ग से च्युत हो गया, मार्ग-भ्रष्ट हो गया है उसकी तो भगवान् महावीर ने ही नहीं सभी ने आलोचना की है।

संघ समाज के दो पक्ष है - एक नारी का, एक पुरुष का, एक साधु और दूसरा साध्वी है। यह संघ है, इसमें अकेला साधु या साध्वी हो और श्रावक हो श्राविका न हो तो कैसे बात बन सकती है? वह सर्वांगीण तीर्थ नहीं बन सकता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org